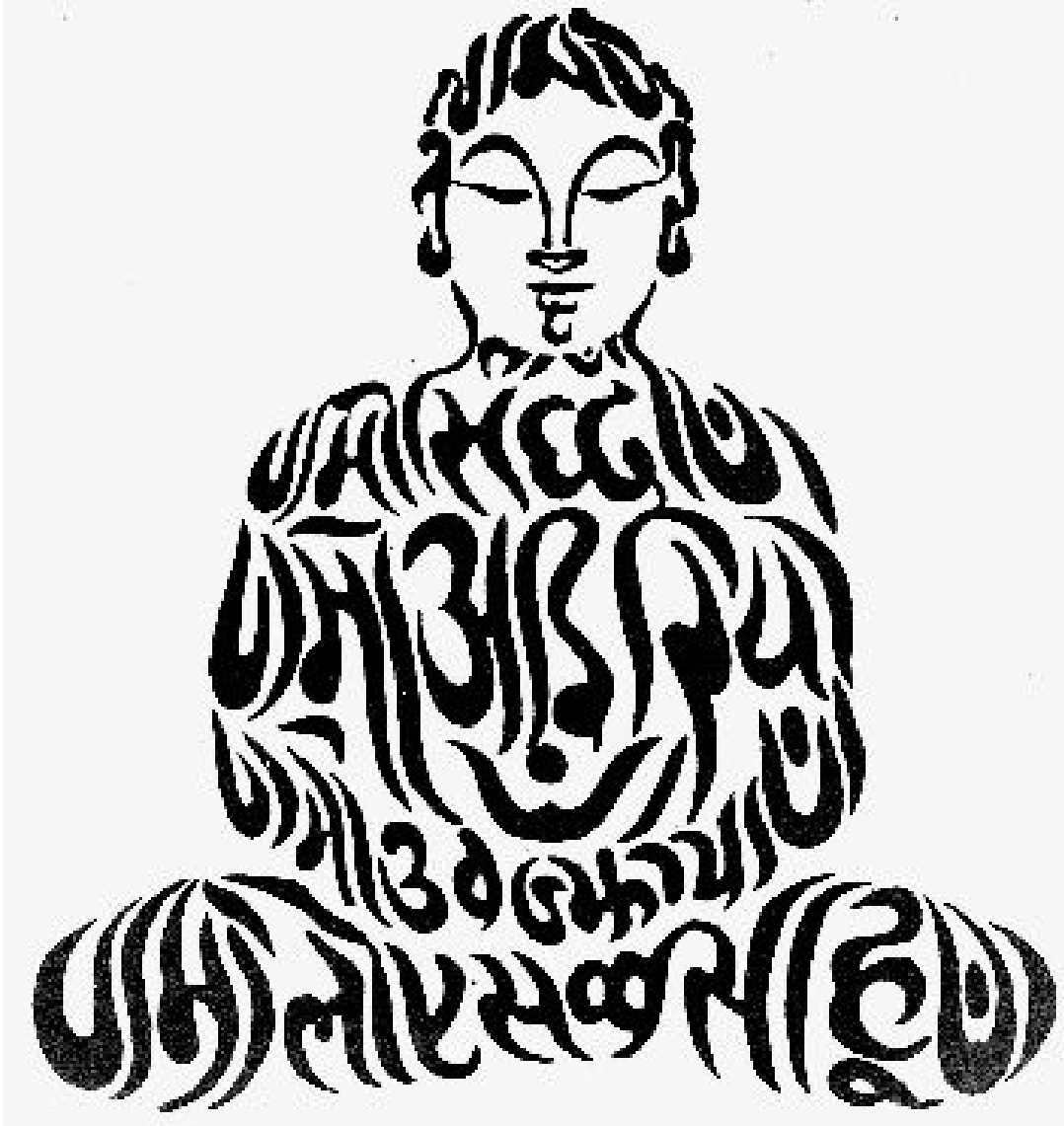


समयसार



- आचार्य कुन्दकुन्द

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः
प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री समयसार नामधेयं, अस्य
मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः
प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचितं

॥ श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

Index

| પાહુડ | કુલ ગાથા |
|------------------|----------|
| મંગલાચરણ | ૧ |
| પીઠિકા | ૧૩ |
| નવ-પદાર્થ અધિકાર | ૧ |
| જીવ અધિકાર | ૨૬ |
| અજીવ અધિકાર | ૩૦ |
| | |
| | |
| | |
| | |

मंगलाचरण

वंदितु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं ॥१॥

[धुवमचलमणोवमं] ध्रुव, अचल और अनुपम [गदिं] गति को [पत्ते] प्राप्त हुए [सव्वसिद्धे] सर्व सिद्धों को [वंदितु] नमस्कार करके [इणं ओ] अहो भव्यों ! [सुदकेवलीभणिदं] श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित यह [समयपाहुडम] समयसार नामक प्राभृत / शास्त्र [वोच्छामि] कहूँगा ।

पीठिका

स्वसमय और परसमय का लक्षण

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं ॥२॥

[जीवो] जो जीव [चरित्तदंसणणाणट्ठिदो] दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हो रहा है [तं] उसे [हि] निश्चय से [ससमयं] स्वसमय [जाण] जानो [च] और जो जीव [पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं] पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित है [तं] उसे [परसमयं] परसमय [जाण] जानो ।

'समय' की सुन्दरता

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥३॥

[एयत्तणिच्छयगदो] एकत्व निश्चय को प्राप्त जो [समओ] समय है वह [लोए] लोक में [सव्वत्थ] सर्वत्र / सब जगह [सुन्दरो] सुन्दर है [तेण] इसलिए [एयत्ते] एकत्व में दुसरे के साथ [बंधकहा] बंध की कथा [विसंवादिणी] विसंवाद / विरोध करनेवाली [होदि] होती है ।

एकत्व की दुर्लभता

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ॥४॥

[सव्वस्सवि] सर्व लोक को [कामभोगबंधकहा] कामभोग संबंधी बंध की कथा तो [सुद] सुनने में आ गई है, [परिचिद] परिचय में आ गई है और [अणुभूदा] अनुभव में भी आ गई है किन्तु

[विहत्तस्स] रागादि रहित आत्मा के [एयत्तस्स] एकत्व को [उवलंभो] उपयोग में लाना [णवरि] एकमात्र वही [ण सुलहो] सुलभ नहीं है ।

आचार्य की प्रतिज्ञा

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेतव्वं ॥५॥

[तं] उस [एयत्तविहत्तं] एकत्व-विभक्त आत्मा को [अप्पणो] आत्मा के [सविहवेण] निज बुद्धि-वैभव से [दाएहं] मैं दिखाता हूँ [जदि] यदि मैं [दाएज्ज] दिखाऊँ तो [पमाणं] प्रमाण (स्वीकार) करना, [चुक्केज्ज] और यदि कहीं चूक जाऊँ तो [छलं] छल [ण] नहीं [घेतव्वं] ग्रहण करना ।

शुद्धात्मा का स्वरूप

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सोउ सो चेव ॥६॥

[जाणगो दु जो भावो] जो ज्ञायक भाव [अप्पमत्ते] अप्रमत्त [ण वि होदि] भी नहीं और [ण पमत्ते] प्रमत्त भी नहीं है, [एवं] इस प्रकार उसे [सुद्धं] शुद्ध [भणंति] कहते हैं [च] और [जो] जिसे [णाओ] ज्ञायक भाव द्वारा जान लिया है [सोउ सो चेव] वह वही है, और कोई नहीं ।

ज्ञानी आत्मा शुद्ध ज्ञायक है

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्तं दंसणं णाणं
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥७॥

[णाणिस्स] ज्ञानी (आत्मा) के [चरित्तं दंसणं णाणं] चारित्र, दर्शन और ज्ञान - ये तीन भाव [ववहारेण] व्यवहार से [उवदिस्सदि] कहे जाते हैं; निश्चय से [णाणंवि] ज्ञान भी [ण] नहीं है, [दंसणं] दर्शन भी नहीं है और [चरित्तं] चारित्र भी नहीं है; ज्ञानी (आत्मा) तो एक [सुद्धो] रागादि रहित [जाणगो] ज्ञायक ही है ।

व्यवहार की आवश्यकता

जह ण वि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं ॥८॥

[जह] जिसप्रकार [अणज्जभासं] अनार्य (म्लेच्छ) भाषा के [विणा] बिना [अणज्जो] अनार्य (म्लेच्छ) जन को कुछ [वि] भी [गाहेदुं] समझाना [सक्कम] संभव [ण] नहीं है; [तह] उसीप्रकार

[ववहारेण] व्यवहार के [विणा] बिना [परमत्थ] परमार्थ (निश्चय) का [उवदेसणम्म] कथन [असक्कं] अशक्य है ।

श्रुतकेवली

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा ॥९॥
जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलं तमाहु जिणा
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा ॥१०॥

[जो] जो जीव [हि] निश्चय से केवल [शुद्धम्] राग द्वेष रहित [अप्पमिणंतु] इस अनुभव गोचर आत्मा को [सुएण] श्रुतज्ञान के [हिगच्छइ] सम्मुख होता हुआ जानते हैं, [तं] उसे [लोएप्पईवयरा] लोक के प्रकाशक [मसिणो] ऋषिगण [सुकेवलिम्] (निश्चय) श्रुतकेवली [भणन्ति] कहते हैं और [यो] जो [सुयणाणं] सर्वश्रुतज्ञान को [जाणइ] जानते हैं, [तमजिणा] उन्हें जिनदेव [सुयकेवलं] (व्यवहार) श्रुतकेवली [आहू] कहते हैं; [जम्हा] क्योंकि [सव्वं] सब [णाणं] ज्ञान [अप्पा] आत्मा ही है [तम्हा] इसलिए वह [सुदकेवली] है ।

आत्म-भावना की प्रेरणा

णाणम्हि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य
ते पूण तिण्णिवि आदा तम्हा कुण भावणं आदे ॥११॥

[णाणम्हि] ज्ञान में, [दंसणे] दर्शन में [य] और [चरित्ते] चारित्र में [खलु] अवश्य [भावणा] भावना [कादव्वा] करनी चाहिए [ते पूण] क्योंकि ये [तिण्णिवि] तीनों [आदा] आत्मा के स्वरूप हैं । [तम्हा] इसलिए [आदे] आत्मा की [भावणं] भावना बार-बार [कुण] करनी चाहिए ।

आत्म-भावना से शीघ्र मुक्ति

जो आदभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि
सो सव्व-दुक्ख-मोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥१२॥

जो मुनि या तपोधन तत्परता के साथ इस आत्मभावना को स्वीकार करता है वह सम्पूर्ण दुःखों से थोड़े ही काल में मुक्त हो जाता है ।

निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहार नय अभूतार्थ है

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ (११)

भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो ॥१३॥

[ववहारो] 'व्यवहार-नय [अभूदत्थो] अभूतार्थ है, [सुद्धणओ] शुद्ध-नय [भूदत्थो] भूतार्थ है' - [देसिदो दु] ऐसा दिखलाया है । [भूदत्थमस्सिदो] भूतार्थ के आश्रित, [जीवो] जीव [खलु] निश्चय से [सम्मादिट्ठी] सम्यग्दृष्टि [हवदि] होता है ।

व्यवहार नय भी प्रयोजनवान है

सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं (१२)

ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥१४॥

[सुद्धो] शुद्धनय [सुद्धादेसो] शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है वह [परमभावदरिसीहिं] शुद्धात्मा को देखने वाले आत्मदर्शी द्वारा [णायव्वो] जानने-भावने योग्य है [पुण] और [जे] जो जीव [अपरमेभावे] अपरमभाव में [ट्ठिदा] स्थित हैं, वे [ववहारदेसिदा] व्यवहारनय द्वारा उपदेश करने योग्य हैं ।

नव-पदार्थ अधिकार

शुद्धनय से जानना सम्यक्त्व है

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च (१३)

आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मतं ॥१५॥

[भूदत्थेण] भूतार्थ / शुद्ध-नय से [अभिगदा] जाने हुए [जीवाजीवा] जीव, अजीव [य] व [पुण्णपावं] पुण्य, पाप, [च] और [आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य] आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष - ये नवतत्त्व ही [सम्मतं] सम्यग्दर्शन हैं ।

जीव अधिकार

शुद्धनय का लक्षण

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं (१४)

अविसेसमसंजुतं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥१६॥

जो [अप्पाणं] आत्मा को [अबद्धपुट्ठं] बंध रहित, पर के स्पर्श रहित, [अणण्णयं] अनन्य, [णियदं] नित्य, [अविसेसम] अविशेष और [असंजुतं] अन्य के संयोग रहित [पस्सदि] अवलोकन करता है, [तं] उसे [सुद्धणयं] शुद्ध-नय [वियाणीहि] जानो ।

जो आत्मा को देखता है वही जिनशासन को जानता है

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं (१५)
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१७॥

जो [अप्पाणं] आत्मा को [अबद्धपुट्ठं] अबद्धस्पृष्ट, [अणण्णमविसेसं] अनन्य, अविशेष [पस्सदि] देखता है; वह [अपदेससंतमज्झं] द्रव्यश्रुत और भाव-श्रुत के मध्य होता हुआ [सव्वं] सम्पूर्ण [जिणसासणं] जिनशासन को [पस्सदि] देखता है ।

ध्यान में केवल आत्मा

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥१८॥

[खु] निश्चय से [मज्झ] मेरे [णाणे] ज्ञान में [आदा] आत्मा ही है । मेरे [दंसणे] दर्शन में, [चरित्ते] चारित्र में [य] और [पच्चक्खाणे] प्रत्याख्यान में भी आत्मा ही है । इसीप्रकार [संवरे] संवर और [जोगे] योग / निर्विकल्प समाधि में भी आत्मा ही है ।

रत्नत्रय ही आत्मा है

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं (१६)
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ॥१९॥

[साहुणा] साधुपुरुष को [दंसणणाणचरित्ताणि] दर्शन-ज्ञान-चारित्र का [णिच्चं] सदा [सेविदव्वाणि] सेवन करना चाहिए [ताणि पुण] और उन [तिण्णि] तीनों को [णिच्छयदो] निश्चय से एक [अप्पाणं] आत्मा [वि] ही [जाण] जानो ।

रत्नत्रय के सेवन का क्रम

जह णाम को वि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि (१७)
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥२०॥
एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो (१८)
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥२१॥

[जह] जिसप्रकार [को वि] कोई [अत्थत्थीओ] धन का अर्थी [पुरिसो] पुरुष [रायाणं] राजा को [जाणिऊण] जानकर उसकी [सद्दहदि] श्रद्धा करता है और [पुणो] फिर [तं] उसका [पयत्तेण] प्रयत्नपूर्वक / लगन से [अणुचरदि] अनुचरण / सेवा करता है; [तह य] उसीप्रकार [मोक्खकामेण] मोक्ष के इच्छुक पुरुषों को [जीवराया] जीवरूपी राजा को [णादव्वो] जानना चाहिए और फिर

उसका [सद्देहद्वो] श्रद्धान करना चाहिए, [य पुणो] उसके बाद [सो चेव] उसी का [अणुचरिद्वो] अनुचरण करना चाहिए ।

आत्मा कब तक अज्ञानी रहता है?

कम्ममे णोकम्मम्हि य अहमिदि अहकं च कम्म णोकम्मं (१९)

जा ऐसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥२२॥

[कम्ममे] ज्ञानावरणी आदि द्रव्यकर्मों, मोह-राग-द्वेषादि भावकर्मों में [अहमिदि] अहंबुद्धि [य] एवं [णोकम्मम्हि] शरीरादि नोकर्मों में [अहकं च कम्म णोकम्मं] ममत्वबुद्धि; यह मानना कि 'ये सभी मैं हूँ और मुझमें ये सभी कर्म-नोकर्म हैं' - [जा ऐसा खलु बुद्धी] जबतक ऐसी बुद्धि बनाए रखता है [ताव] तबतक [अप्पडिबुद्धो] अप्रतिबुद्ध [हवदि] रहता है, अज्ञानी रहता है ।

आत्मा के बंध मोक्ष का कारण

**जीवेव अजीवे वा संपदि समयम्हि जत्थ उवजुत्तो
तत्थेव बंधमोक्खो हवदि समासेण णिदिट्ठो ॥२३॥**

[जीवेव] जीव तथा [अजीवे वा] अजीव-देहादिक में [संपदि समयम्हि] जिस समय यह आत्मा [जत्थ उवजुत्तो] जहाँ उपयुक्त रहता है [तत्थेव] तभी [बंधमोक्खो] मोक्ष तथा बंध [हवदि] होता है, ऐसा [समासेण णिदिट्ठो] संक्षेप से कथन किया है ।

निश्चय और व्यवहार से जीव का कर्तापना

**जं कुणदि भावामादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स
णिच्छयदो ववहारा पोग्गलकम्माण कत्तारं ॥२४॥**

[णिच्छयदो] निश्चयनय से [जं] जिस [भावामादा] भाव को आत्मा [कुणदि] करता है [तस्स] उस [भावस्स] भाव का [सो] वह [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है और [ववहारा] व्यवहारनय से [पोग्गलकम्माण] पुद्गल-कर्मों का [कत्तारं] कर्ता होता है ।

ज्ञानी और अज्ञानी जीव की पहचान

अहमेदं एदमहं अहमेदस्स म्हि अत्थि मम एदं (२०)

अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ॥२५॥

आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि (२१)

होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि ॥२६॥

एयं तु असम्भूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो (२२) भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो ॥२७॥

जो पुरुष [अण्णं जं परदव्वं] अपने से भिन्न परद्रव्यों में - [सच्चित्तचित्तमिस्सं वा] सचित्त स्त्री-पुत्रादिक में, अचित्त धन-धान्यादिक में, मिश्र ग्राम-नगरादिक में ऐसा विकल्प करता है कि [अहमेदं] मैं ये हूँ, [एदमहं] ये सब द्रव्य मैं हूँ; [अहमेदस्सेव होमि मम एदं] मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं; [आसि मम पुव्वमेदं] ये मेरे पहले थे, [अहमेदं चावि पुव्वकालहिमि] इनका मैं पहले था; तथा [होहिदि पुणोवि मज्झं] ये सब भविष्य में मेरे होंगे, [अहमेदं चावि होस्सामि] मैं भी भविष्य में इनका होऊंगा - [एवं तु] इसप्रकार [असंभूदं] मिथ्या-रूप [आदवियप्पं] विचारों को जो आत्मा [करेदि] करता है वह [संमूढो] मूढ़ है, अज्ञानी है; किन्तु जो पुरुष वस्तु का [भूदत्थं] वास्तविक स्वरूप [जाणंतो] जानता हुआ [ण करेदि दुतं] ऐसे झूठे विकल्प नहीं करता है, वह [असंमूढो] ज्ञानी है ।

पर पदार्थ को जीव का कहना ठीक नहीं - तर्क

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पोग्गलं दव्वं (२३)

बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्ते ॥२८॥

सव्वण्हणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं (२४)

कह सो पोग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥२९॥

जदि सो पोग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं (२५)

तो सक्को वत्तुं जे मज्झमिणं पोग्गलं दव्वं ॥३०॥

[अण्णाण] अज्ञान से [मोहिद] मोहित [मदी] बुद्धि वाला [जीवो] जीव [बद्धम] बद्ध (शरीरादि) [च] और [अबद्धं] अबद्ध (धन-धान्यादि) [पुग्गलंदव्वं] पुद्गल द्रव्य को [मज्झमिणं] अपना [भणदि] कहता है [तहा] तथा [बहुभावसंजुत्तो] बहु भावों से युक्त हो रहा है । [सव्वण्हणाण] सर्वज्ञ के ज्ञान में [दिट्ठो] देखा गया है कि यह [जीवो] जीव-द्रव्य [णिच्चं] नित्य / सदैव [उवओग] उपयोग [लक्खणो] लक्षण वाला है, [सो] यह [पुग्गलदव्वो] पुद्गल-द्रव्य [भूदो] रूप [कह] कैसे हो सकता है, [जंभणसि] जिससे कहता है कि [मज्झमिणं] ये मेरे हैं । [जदि] यदि [सो] वह (जीव) [पुग्गलदव्वो] पुद्गल-द्रव्य रूप [भूदो] हो जाये और [इदरं] अन्य (पुद्गल) [जीवत्तमागदं] जीवत्व को प्राप्त करे तब [वत्तुं] कहना [सत्तो] शक्य होगा कि [जे] यह [पुग्गलदव्वं] पुद्गल द्रव्य [मज्झमिणं] मेरा है !

प्रश्न - आत्मा-शरीर एक नहीं तो शरीराश्रित स्तुति कैसे ?

**जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरिसंथुदी चेव (२६)
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो ॥३१॥**

[जदि] यदि [जीवो] जीव [सरीरं] शरीर [ण] नहीं है तो [तित्थ] तीर्थकर [चेव] और [आयरायरिय] आचार्यों की [संथुदी] स्तुति, [चेव] और भी [सव्वावि] सब ही [मिच्छा] मिथ्या / व्यर्थ ठहरती [हवदि] है, [तेण] अतः [आदा] आत्मा [देहो] शरीर [हवदि] है ।

व्यवहार से जीव और शरीर एक, निश्चय से नहीं

**ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलुएक्को (२७)
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदा वि एक्कट्ठो ॥३२॥**

[ववहारणओ] व्यवहार-नय [भासदि] कहता है कि [जीवो देहो य] जीव और शरीर [खलुएक्को] एक ही [हवदि] हैं; [दु] किन्तु [णिच्छयस्स] निश्चय-नय से [जीवो देहो य] जीव और शरीर [कदा वि] कभी भी [एक्कट्ठो] एक पदार्थ [ण] नहीं हैं ।

व्यवहार स्तुति निश्चय स्तुति नहीं

इणमण्णं जीवादो देहं पोग्गलमयं थुणित्तु मुणी (२८)

मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥३३॥

तं णिच्छये ण जुज्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो (२९)

केवलिगुणो थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥३४॥

[जीवादो] जीव से [अण्णं] भिन्न [इणम] इस [देहं पोग्गलमयं] पुद्गलमय देह की [थुणित्तु] स्तुति करके [मुणी] साधु ऐसा [मण्णदि हु] मानते हैं कि [मए] मैंने [केवली भयवं] केवली भगवान की [संथुदो] स्तुति की और [वंदिदो] वन्दना की । [तं] वह स्तवन [णिच्छये] निश्चयनय से [ण जुज्जदि] योग्य नहीं है; [हि] क्योंकि [सरीरगुणा] शरीर के गुण [केवलिणो] केवली के [ण] नहीं [होंति] होते । जो [केवलिगुणो] केवली के गुणों की [थुणदि] स्तुति करता है, [सो] वह [तच्चं] परमार्थ से [केवलिं] केवली की [थुणदि] स्तुति करता है ।

दृष्टान्त - नगर का वर्णन राजा का वर्णन नहीं

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा होदि (३०)

देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥३५॥

[जह] जैसे [णयरम्मि] नगर का [वण्णिदे वि] वर्णन करने पर भी [रण्णो] राजा का [वण्णणा] वर्णन [ण] नहीं [कदा होदि] किया जाता, इसीप्रकार [देहगुणे] शरीर के गुण का [थुव्वंते] स्तवन करने पर [केवलिगुणा] केवली के गुणों का [थुदा] स्तवन [ण] नहीं [होंति] होता ।

निश्चय स्तुति - जितेन्द्रिय

जो इन्द्रिये जिणिता पाणसहावाधियं मुणदि आदं (३१)

तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥३६॥

जो [इन्द्रिये] इन्द्रियों को [जिणिता] जीतकर [आदं] आत्मा को [पाणसहावाधियं] ज्ञान-स्वभाव द्वारा अन्य द्रव्यों से अधिक (भिन्न) [मुणदि] जानते हैं; [तं] वे [खलु] वस्तुतः [जिदिंदियं] जितेन्द्रिय हैं - ऐसा [णिच्छिदा] निश्चयनय में स्थित [साहू] साधुजन [भणंति] कहते हैं।

निश्चय स्तुति - जितमोह, क्षीणमोह

जो मोहं तु जिणिता पाणसहावाधियं मुणदि आदं (३२)

तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया बेंति ॥३७॥

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स (३३)

तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं ॥३८॥

जो [मोहं तु] मोह को [जिणिता] जीतकर [आदं] आत्मा को [पाणसहावाधियं] ज्ञानस्वभाव के द्वारा (अन्य द्रव्यभावों से) अधिक [मुणदि] जानता है [तं] उस [साहुं] साधु को, [परमट्ठवियाणया] परमार्थ के जाननेवाले, [जिदमोहं] जितमोह [बेंति] कहते हैं। [जिदमोहस्स] जिसने मोह को [जइया] जीत लिया है, ऐसे [साहुस्स] साधु के जब [मोहो] मोह [खीणो] क्षीण [हविज्ज] हो जाए, [तइया हु] तब [सो] उस साधु को [णिच्छयविदूहिं] निश्चयनय के जानकार [खीणमोहो] क्षीणमोह [भण्णदि] कहते हैं।

प्रतिबुद्ध द्वारा परभावों का त्याग - प्रत्याख्यान

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं (३४)

तम्हा पच्चक्खाणं पाणं णियमा मुणेदव्वं ॥३९॥

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिदुं चयदि (३५)

तह सव्वे परभावे णाऊण विमुञ्चदे णाणी ॥४०॥

[जम्हा] जिसकारण यह आत्मा अपने आत्मा से भिन्न [सव्वे भावे] समस्त भावों को [परेत्ति] 'वे पर हैं' - ऐसा [णादूणं] जानकर [पच्चक्खाई] प्रत्याख्यान / त्याग करता है, [तम्हा] उसी कारण [पच्चक्खाणं] प्रत्याख्यान [पाणं] ज्ञान ही है -- ऐसा [णियमा] नियम से [मुणेदव्वं] जानना चाहिए। [जह] जिसप्रकार लोक में [कोवि पुरिसो] कोई पुरुष [परदव्वमिणंति] परवस्तु को 'यह

परवस्तु है' - ऐसा [जाणिदं] जानकर परवस्तु का [चयदि] त्याग करता है [तह] उसीप्रकार [णाणी] जानी पुरुष [सव्वे परभावे] समस्त पर-भावों को [णाऊण] जानकर [विमुञ्चदे] छोड़ देते हैं ।

मोह से निर्मम

**णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को (३६)
तं मोहणिम्ममतं समयस्स वियाणया बेंति ॥४१॥**

[मोहो] मोह [मम] मेरा [को वि] कुछ भी [णत्थि] नहीं है, [अहमेक्को] मैं तो एक [उवओग] उपयोगमय [एव] ही हूँ - [तं] ऐसा [बुज्झदि] जानने को [समयस्स वियाणया] सिद्धांत अथवा स्व-पर के जानने वाले [मोहणिम्ममतं] मोह से निर्मम [बेंति] कहते हैं ।

धर्मादि ज्ञेय पदार्थ से निर्मम

**णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमेक्को (३७)
तं धम्मणिम्ममतं समयस्स वियाणया बेंति ॥४२॥**

[धम्म आदी] धर्म आदि द्रव्य [णत्थि मम] मेरे कुछ भी नहीं लगते, [उवओग एव] उपयोग ही [अहमेक्को] एक मैं हूँ -- [तं] ऐसा [बुज्झदि] जानने को [समयस्स वियाणया] सिद्धांत अथवा स्व-पर के जानने वाले [धम्मणिम्ममतं] धर्म-द्रव्य के प्रति निर्ममत्व [बेंति] कहते हैं ।

मैं एक शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी

**अहमेक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइयो सदारूवी (३८)
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमेतं पि ॥४३॥**

[अहमेक्को] मैं एक हूँ, [खलु] स्पष्ट रूप से [सुद्धो] शुद्ध [दंसणणाणमइयो] दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणत [सदारूवी] सदा अरूपी हूँ और [अण्णं] अन्य [परमाणुमेतंपि] परमाणुमात्र द्रव्य [किंचिवि] किंचित्मात्र भी [मज्झ] मेरे [ण अत्थि] नहीं हैं ।

अजीव अधिकार

जीव-अजीव मैं एकता - मिथ्या-मत

**अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई (३९)
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूवेंति ॥४४॥
अवरे अज्झवसाणेसु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं (४०)
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति ॥४५॥**

कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति (४१)

तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥४६॥

जीवो कम्मं उहयं दोण्णि वि खलु केइ जीवमिच्छंति (४२)

अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥४७॥

एवंविहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा (४३)

ते ण परमट्ठवादी णिच्छयवादीहिं णिट्ठिठा ॥४८॥

[अप्पाणमयाणंता] आत्मा को न जानते हुए [परप्पवादिणो] पर को आत्मा कहने वाले [केई मूढा दु] कोई मूढ़, मोही, अज्ञानी तो [अज्झवसाणं] अध्यवसान को [च तहा] और कोई [कम्मं] कर्म को [जीवं परूवेंति] जीव कहते हैं । [अवरे] अन्य कोई [अज्झवसाणेसु] अध्यवसानों में [तिव्वमंदाणुभागं] तीव्रमंद अनुभागगत को [जीवं मण्णंति] जीव मानते हैं [तहा] और [अवरे] दूसरे कोई [णोकम्मं चावि] नोकर्म को [जीवोत्ति] जीव मानते हैं [अवरे] अन्य कोई [कम्मस्सुदयं] कर्म के उदय को [जीवम्] जीव मानते हैं, कोई जो [तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं] तीव्र-मन्दता-रूप गुणों से भेद को प्राप्त होता है [सो] वह [हवदि जीवो] जीव है' इसप्रकार [कम्माणुभागम्] कर्म के अनुभाग को [इच्छन्ति] जीव इच्छते हैं (मानते हैं) [केइ] कोई [जीवो कम्मं उहयं] जीव और कर्म [दोण्णि वि खलु] दोनों मिले हुआ को ही [जीवम् इच्छन्ति] जीव मानते हैं [दु] और [अवरे] अन्य कोई [कम्माणं संजोगेण] कर्म के संयोग से ही [जीवम् इच्छन्ति] जीव मानते हैं । [एवंविहा] इस प्रकार के तथा [बहुविहा] अन्य भी अनेक प्रकार के [दुम्मेहा] दुर्बुद्धि-मिथ्यादृष्टि जीव [परमप्पाणं] पर को आत्मा [वदन्ति] कहते हैं । [ते] उन्हें [णिच्छयवादीहिं] निश्चयवादियों ने (सत्यार्थवादियों ने) [परमट्ठवादी] परमार्थवादी [सत्यार्थवक्ता ण णिट्ठिठा] नहीं कहा है ।

जीव-अजीव में भिन्नता - मिथ्या-मत खण्डन

एदे सव्वे भावा पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा (४४)

केवलिजिणेहिं भणिया कह ते जीवो ति वुच्चंति ॥४९॥

[एदे] यह पूर्वकथित अध्यवसान आदि [सव्वे भावा] भाव हैं वे सभी [पोग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा] पुद्गलद्रव्य के परिणाम से निष्पन्न / उत्पन्न हुए हैं इसप्रकार [केवलिजिणेहिं] केवली सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव ने [भणिया] कहा है [ते] उन्हें [जीवोत्ति] जीव ऐसा [कह वुच्चंति] कैसा कहा जा सकता है ?

आठों कर्मों का फल -- अध्यवसान

अठ्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पोग्गलमयं जिणा बेंति (४५)

जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥५०॥

[अठ्ठविहं पि य] आठों प्रकार का [कम्मं] कर्म [सव्वं] सब [पोग्गलमयं] पुद्गलमय है ऐसा [जिणा] जिनेन्द्रभगवान सर्वज्ञदेव [बैंति] कहते हैं - [जस्स विपच्चमाणस्स] जो पक्व होकर उदय में आनेवाले कर्म का [फलं] फल [तं] प्रसिद्ध [दुक्खं] दुःख है [ति वुच्चदि] ऐसा कहा है ।

अध्यवसान-भाव जीव है - व्यवहार

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं (४६)

जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥५१॥

[एदे सव्वे] यह सब [अज्झवसाणादओ भावा] अध्यवसानादि भाव [जीवा] जीव हैं इसप्रकार [जिणवरेहिं] जिनेन्द्र-देव ने [उवएसो] जो उपदेश दिया है सो [ववहारस्स दरीसणमु] व्यवहारनय [वण्णिदो] दिखाया है ।

इस व्यवहार को दृष्टांत द्वारा समझाते हैं

राया हु णिग्गदो ति य एसो बलसमुदयस्स आदेसो (४७)

ववहारेण दु उच्चदि तत्थेक्को णिग्गदो राया ॥५२॥

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादिअण्णभावाणं (४८)

जीवो ति कदो सुत्ते तत्थेक्को णिच्छिदो जीवो ॥५३॥

(जैसे कोई राजा सेनासहित निकला वहाँ) [राया हु णिग्गदो] यह राजा निकला [ति य एसो] इसप्रकार जो यह [बलसमुदयस्स] सेना के समुदाय को [आदेसो] कहा जाता है सो वह [ववहारेण दु उच्चदि] व्यवहार से कहा जाता है, [तत्] उस सेना में [एक्को णिग्गदो राया] राजा तो एक ही निकला है; [एमेव य] इसीप्रकार [अज्झवसाणादिअण्णभावाणं] अध्यवसानादि अन्य भावों को [जीवो ति] '(यह) जीव है' इसप्रकार [सुत्ते] परमागम में कहा है सो [ववहारो कदो] व्यवहार किया है, [तत् णिच्छिदो] यदि निश्चय से विचार किया जाये तो उनमें [एक्को जीवो] जीव तो एक ही है ।

शुद्ध जीव कैसा होता है?

अरसमरुवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं (४९)

जाण अलिंगगहणं जीवमणिद्धिट्ठसंठाणं ॥५४॥

[जीवम्] जीव को [अरसम्] रस-रहित, [अरुवम्] रूप-रहित, [अगन्धम्] गन्ध-रहित, [अव्वत्तं] अव्यक्त अर्थात् इन्द्रिय-गोचर नहीं ऐसा, [चेदणागुणम्] चेतना जिसका गुण है ऐसा, [असद्दम्]

शब्दरहित, [अलिङ्गगहणं] किसी चिह्न से ग्रहण न होनेवाला और [अणिद्विट्ठसंठाणम्] जिसका कोई आकार नहीं कहा जाता ऐसा [जाण] जान ।

शुद्ध जीव कैसा नहीं होता है?

जीवस्स णत्थि वण्णो ण वि गंधो ण वि रसो ण वि य फासो (५०)

ण वि रूवं ण सरीरं ण वि संठाण ण संहणणं ॥५५॥

जीवस्स णत्थि रागो ण वि दोसो णेव विज्जदे मोहो (५१)

णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥५६॥

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्ढया केई (५२)

णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभागठाणाणि ॥५७॥

जीवस्य णत्थि केई जोयट्ठाणा ण बंधठाणा वा (५३)

णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥५८॥

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा (५४)

णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥५९॥

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स (५५)

जेण दु एदे सव्वे पोग्गलदव्वस्स परिणामा ॥६०॥

[जीवस्स] जीव के [वण्णो] वर्ण [णत्थि] नहीं, [ण वि गंधो] गन्ध भी नहीं, [ण वि रसो] रस भी नहीं [य] और [ण वि फासो] स्पर्श भी नहीं, [ण वि रूवं] रूप भी नहीं, [ण सरीरं] शरीर भी नहीं, [ण वि संठाण] संस्थान भी नहीं, [ण संहणणं] संहनन भी नहीं; [जीवस्स] जीव के [णत्थि रागो] राग भी नहीं, [ण वि दोसो] द्वेष भी नहीं, [मोहो] मोह भी [णेव विज्जदे] विद्यमान नहीं, [णो पच्चया] प्रत्यय (आस्रव) भी नहीं, [ण कम्मं] कर्म भी नहीं [च] और [णोकम्मं वि] नोकर्म भी [से णत्थि] उसके नहीं है; [जीवस्स णत्थि वग्गो] जीव के वर्ग नहीं, [ण वग्गणा] वर्गणा नहीं, [णेव फड्ढया केई] कोई स्पर्धक भी नहीं, [णो अज्झप्पट्ठाणा] अध्यात्मस्थान भी नहीं [य] और [अणुभागठाणाणि] अनुभागस्थान भी [णेव] नहीं है; [जीवस्य] जीव के [णत्थि केई जोयट्ठाणा] कोई योगस्थान भी नहीं [वा] अथवा [ण बंधठाणा] बन्धस्थान भी नहीं, [य] और [उदयट्ठाणा] उदयस्थान भी [णेव] नहीं, [ण मग्गणट्ठाणया केई] कोई मार्गणास्थान भी नहीं हैं; [जीवस्य] जीव के [णो ठिदिबंधट्ठाणा] स्थितिबन्धस्थान भी नहीं [वा] अथवा [ण संकिलेसठाणा] संक्लेशस्थान भी नहीं, [विसोहिट्ठाणा] विशुद्धिस्थान भी [णेव] नहीं [वा] अथवा

[संजमलद्धिठाणा] संयमलब्धिस्थान भी [णो] नहीं हैं; [य] और [जीवस्स] जीव के [जीवट्ठाणा] जीवस्थान भी [णेव] नहीं [वा] अथवा [गुणट्ठाणा] गुणस्थान भी [ण अत्थि] नहीं हैं; [जेण दु] क्योंकि [एदे सव्वे] यह सब [पोग्गलदव्वस्स] पुद्गलद्रव्य के [परिणामा] परिणाम हैं ।

व्यवहार से वर्णादि भाव जीव के, निश्चय से नहीं

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया (५६)

गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥६१॥

[एदे] यह [वण्णमादीया] वर्ण को आदि लेकर [गुणठाणंता] गुणस्थान-पर्यन्त जो [भावा] भाव कहे गये वे [ववहारेण दु] व्यवहार-नय से तो [जीवस्स हवंति] जीव के हैं [दु] किन्तु [णिच्छयणयस्स] निश्चय-नय से [केई ण] कोई भी नहीं है ।

जीव का वर्णादि के साथ संयोग सम्बन्ध

एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो (५७)

ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ॥६२॥

[एदेहिं य सम्बन्धो] इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का सम्बन्ध [जहेव खीरोदयं] दूध और पानी का एक-क्षेत्रावगाह-रूप संयोग-सम्बन्ध है ऐसा [मुणेदव्वो] जानना [य] और [ताणि] वे [तस्स दु ण होंति] उस जीव के नहीं हैं [जम्हा] क्योंकि जीव [उवओगगुणाधिगो] उनसे उपयोग-गुण से अधिक / भिन्न है ।

दृष्टान्त द्वारा सम्बन्ध को बतलाते हैं

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी (५८)

मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥६३॥

तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं (५९)

जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ॥६४॥

गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य (६०)

सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥६५॥

[पंथे मुस्संतं] जैसे मार्ग में जाते हुए व्यक्ति को लुटता हुआ [पस्सिदूण] देखकर '[एसो पंथो] यह मार्ग [मुस्सदि] लुटता है,' इसप्रकार [ववहारी लोगा] व्यवहारीजन [भणंति] कहते हैं; किन्तु परमार्थ से विचार किया जाये तो [कोई पंथो] कोई मार्ग तो [ण य मुस्सदे] नहीं लुटता, (मार्ग में जाता हुआ मनुष्य ही लुटता है) [तह] इसीप्रकार [जीवे] जीव में [कम्माणं णोकम्माणं च] कर्मों का

और नोकर्मों का [वण्णं] वर्ण [पस्सिदं] देखकर '[जीवस्य] जीव का [एस वण्णो] यह वर्ण है' इसप्रकार [जिणेहिं] जिनेन्द्रदेव ने [ववहारदो] व्यवहार से [उत्तो] कहा है [एवं] इसीप्रकार [गंधरसफासरूवा] गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, [देहो संठाणमाइया] देह, संस्थान आदि [जे य सव्वे] जो सब हैं, [ववहारस्स] वे सब व्यवहार से [णिच्छयदण्हू] निश्चय के देखनेवाले [ववदिसंति] कहते हैं ।

वर्णादि भाव के साथ जीव का तादात्म्य नहीं

तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादि (६१)

संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥६६॥

[वण्णादि] वर्णादि भाव [संसारत्थाण] संसार में स्थित [जीवाणं] जीवों के [तत्थ भवे] उस संसार में [होंति] होते हैं, और [संसारपमुक्काणं] संसार से मुक्त हुए जीवों के [हु] निश्चय से [वण्णादओ केई] वर्णादिक कोई भी (भाव) [णत्थि] नहीं ।

जीव का वर्णादि से तादात्म्य में दोष

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव ति मण्णसे जदि हि (६२)

जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई ॥६७॥

[जदि हि] यदि ऐसा ही [ति मण्णसे] मानोगे कि [एदे सव्वे भाव] यह (वर्णादिक) सर्वभाव [जीवो चेव हि] जीव ही हैं, [दु] तो [दे] तुम्हारे मत में [जीवस्साजीवस्स य] जीव और अजीव का [कोई] कोई [विसेसो] भेद [णत्थि] नहीं रहता ।

संसार अवस्था में जीव के वर्णादि से तादात्म्य में दोष

अह संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी (६३)

तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥६८॥

एवं पोग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमदी (६४)

णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पोग्गलो पत्तो ॥६९॥

[अह] अथवा यदि [तुज्झ] तुम्हारा मत यह हो कि [संसारत्थाणं जीवाणं] संसार में स्थित जीवों के ही [वण्णादी] वर्णादिक (तादात्म्य-स्वरूप से) [होंति] हैं, [तम्हा] तो इस कारण से [संसारत्था जीवा] संसार में स्थित जीव [रूवित्तमावण्णा] रूपित्व को प्राप्त हुये; [एवं] ऐसा होने से, [तहलक्खणेण] वैसा लक्षण (अर्थात् रूपित्व-लक्षण) तो पुद्गल-द्रव्य का होने से, [मूढमदी] हे मूढ़बुद्धि ! [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य ही [जीवो] जीव कहलाया [य] और (मात्र संसार-अवस्था में

ही नहीं किन्तु) [णिव्वाणमुवगदो वि] निर्वाण प्राप्त होने पर भी [पोग्गलो] पुद्गल ही [जीवतं] जीवत्व को [पत्तो] प्राप्त हुआ ।

अतः नाम-कर्म का उदय जीव नहीं है

एक्कं च दोण्णि तिप्णि य चत्तारि य पंच इन्द्रिया जीवा (६५)

बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥७०॥

एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं (६६)

पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ॥७१॥

[एक्कं च] एकेन्द्रिय, [दोण्णि] द्वीन्द्रिय, [तिप्णि य] और त्रीन्द्रिय, [चत्तारि य] चतुरिन्द्रिय, और [पंच इन्द्रिया] पञ्चेन्द्रिय, [बादरपज्जत्तिदरा] बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त [जीवा] जीव ये [णामकम्मस्स] नामकर्म की [पयडीओ] प्रकृतियाँ हैं; [एदाहि य] इन [पयडीहिं] प्रकृतियों [पोग्गलमइहिं ताहिं] जो कि पुद्गल-मय-रूप से प्रसिद्ध हैं उनके द्वारा [करणभूदाहिं] करणस्वरूप होकर [णिव्वत्ता] रचित [जीवट्ठाणा] जो जीवस्थान (जीवसमास) हैं वे [जीवो] जीव [कहं] कैसे [भण्णदे] कहे जा सकते हैं ?

देह को जीव कहना व्यवहार

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव (६७)

देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥७२॥

[जे] जो [पज्जत्तापज्जत्ता] पर्याप्त, अपर्याप्त [सुहुमा बादरा य] सूक्ष्म और बादर आदि [जे चेव] जितनी [देहस्य] देह की [जीवसण्णा] जीवसंज्ञा कही हैं वे सब [सुत्ते] सूत्र में [ववहारदो] व्यवहार से [उत्ता] कही हैं ।

अन्तरंग गुणस्थानादि भी जीव नहीं

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णि या जे इमे गुणट्ठाणा (६८)

ते कह हवन्ति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ॥७३॥

[जे इमे] जो यह [गुणट्ठाणा] गुणस्थान हैं वे [मोहणकम्मस्सुदया दु] मोहकर्म के उदय से होते हैं [वण्णि या] ऐसा (सर्वज्ञ द्वारा) वर्णन किया गया है; [ते] वे [जीवा] जीव [कह] कैसे [हवन्ति] हो सकते हैं कि जो [णिच्चम] सदा [अचेदणा] अचेतन [उत्ता] कहे गये हैं ?

आस्रव और जीव का भेद ना जानना - अप्रतिबुद्ध / अज्ञानी

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोहणं पि (६९)

अण्णाणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो ॥७४॥
कोहादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदी (७०)
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥७५॥

[जीवो] यह जीव [जाव] जब तक [तु आदासवाण दोहणं पि] आत्मा और आस्रव इन दोनों के [विसेसंतरं] भिन्न-भिन्न लक्षणों को [ण वेदि] नहीं जानता [ताव] तब तक [सो अण्णाणी] वह अज्ञानी हुआ [कोहादिसु] क्रोधादिक आस्रवों में [वट्टदे] प्रवर्तता है । [कोहादिसु] क्रोधादिकों में [वट्टंतस्स तस्स] वर्तते हुए उसके [कम्मस्स] कर्मों का [संचओ होदी] संचय होता है । [खलु] निश्चयतः [एवं] इस प्रकार [जीवस्य] जीव के [बंधो] कर्मों का बंध [सव्वदरिसीहिं] सर्वजदेवों ने [भणिदो] कहा है ।

कर्ता-कर्म रूप प्रवृत्ति की निवृत्ति

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव (७१)
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से ॥७६॥

[जइया] जब [इमेण] यह [जीवेण] जीव [अप्पणो] आत्मा [य] और [आसवाण] आस्रवों का [विसेसंतरं] अन्तर व भेद [णादं] जानता [होदि] है, [तइया ण बंधो से] तब उसे बंध नहीं होता ।

ज्ञानी निर्बंध कैसे होता है ?

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च (७२)
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥७७॥

[आसवाणं] आस्रवों की [असुचित्तं] अशुचिता [च] एवं [विवरीयभावं] विपरीतता [णादूण] जानकर [च] और वे [दुक्खस्स कारणं] दुःख के कारण हैं - [इति य] अतः [जीवो] जीव [तदो] उनसे [णियत्तिं] निवृत्ति [कुणदि] करता है ।

आस्रवों से किस तरह निवृत्ति होती है ?

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो (७३)
तम्मि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥७८॥

ज्ञानी विचारता है कि [खलु] निश्चयतः [अहमेक्को] मैं एक हूं [सुद्धो] शुद्ध हूं [णिम्ममओ] ममत्तारहित हूं [णाणदंसणसमग्गो] ज्ञान दर्शन से पूर्ण हूं [तम्मि ठिदो] ऐसे स्वभाव में स्थित [तच्चित्तो] उसी चैतन्य अनुभव में लीन हुआ [एदे] इन [सव्वे] क्रोधादिक सब आस्रवों को [खयं] क्षय को [णेमि] प्राप्त कराता हूं ।

स्व-संवेदन-ज्ञान और रागादि-आस्रव-भावों के अभाव का समकाल

जीवणिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा य (७४)

दुक्खा दुक्खफलात्ति य णादूण णिवत्तदे तेहिं ॥७९॥

[एते] ये (आस्रव) [जीवणिबद्धा] जीव के साथ निबद्ध है [अधुव] अधुव है [तहा] तथा [अणिच्चा] अनित्य है [य] और [असरणा] अशरण है [दुक्खा] दुःखरूप हैं [य] और [दुक्खफला] दुःखफल वाले हैं [इति णादूण] ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष [तेहिं] उनसे [णिवत्तदे] अलग हो जाता है ।

ज्ञानी की पहचान

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस य तहेव परिणामं (७५)

ण करेदि एदमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥८०॥

[य] जो [आदा] जीव [एनं] इस [कम्मस्स य परिणामं] कर्म के परिणाम को [य तहेव] और उसी भांति [णोकम्मस परिणामं] नोकर्म के परिणाम को [ण करेदि] नहीं करता है, परंतु [जाणदि] जानता है [सो] वह [णाणी] ज्ञानी [हवदि] है ।

आत्मा पुण्य-पापादि परिणामों का कर्ता - व्यवहार

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण

धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥८१॥

[य] जो [आदा] जीव [एनं] इस [कम्मस्स य परिणामं] कर्म के परिणाम को [य तहेव] और उसी भांति [णोकम्मस परिणामं] नोकर्म के परिणाम को [ण करेदि] नहीं करता है, परंतु [जाणदि] जानता है [सो] वह [णाणी] ज्ञानी [हवदि] है ।

जीव के पुद्गल-कर्म को जानने से कर्ता-कर्मभाव नहीं

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि णपरदव्वपज्जाए (७६)

णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥८२॥

[णाणी] ज्ञानी [अणेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-द्रव्य के पर्याय रूप कर्मों को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [हु] निश्चय से [परदव्वपज्जाए] पर द्रव्य के पर्यायों में [ण वि परिणमदि] न ही परिणमित होता है [ण गिण्हदि] न ग्रहण करता है [उप्पज्जदि ण] और न उत्पन्न होता है ।

जीव अपने परिणामों को जानता हुआ भी पुद्गल के साथ कर्ता-कर्मभाव नहीं ?

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए (७७)

णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥८३॥

[णाणी] ज्ञानी [अण्यविहं] अनेक प्रकार के [सगपरिणामं] अपने परिणामों को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [हु] निश्चय से [परदव्वपज्जाए] पर द्रव्य के पर्यायों में [ण वि परिणमदि] न ही परिणमित होता है [ण गिण्हदि] न ग्रहण करता है [उप्पज्जदि ण] और न उत्पन्न होता है ।

पुद्गल-कर्म के फल को जानते हुए जीव का पुद्गल के साथ कर्तृ-कर्म-भाव नहीं

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए (७८)

णाणी जाणंतो वि हु पोग्गलकम्मप्फलमणंतं ॥८४॥

[णाणी] ज्ञानी [अण्यविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मप्फलमणंतं] अनन्त पुद्गल-कर्म के फलों को [जाणंतो वि] जानता हुआ भी [हु] निश्चय से [परदव्वपज्जाए] पर द्रव्य के पर्यायों में [ण वि परिणमदि] न ही परिणमित होता है [ण गिण्हदि] न ग्रहण करता है [उप्पज्जदि ण] और न उत्पन्न होता है ।

पुद्गल-द्रव्य का जीव के साथ कर्तृ-कर्म-भाव नहीं

ण वि परिणमदि ण गिण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए (७९)

पोग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सएहिं भावेहिं ॥८५॥

[पोग्गलदव्वं पि] पुद्गल द्रव्य भी [परदव्वपज्जाए] पर-द्रव्य के पर्याय में [तहा] उस प्रकार [ण वि परिणमदि] न तो परिणमन करता है, [ण गिण्हदि] उसको ग्रहण भी नहीं करता और [उप्पज्जदि ण] न उत्पन्न होता है, किन्तु [सएहिं भावेहिं] अपने भावों से ही [परिणमदि] परिणमन करता है ।

जीव और पुद्गल के निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने पर भी कर्ता-कर्म भाव नहीं

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति (८०)

पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥८६॥

ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे (८१)

अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हं पि ॥८७॥

एदेण कारणेण दु कत्त आदा सएण भावेण (८२)

पोग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्त सव्वभावाणं ॥८८॥

[पोग्गला] पुद्गल [जीवपरिणामहेदुं] जीव के परिणाम का निमित्त पाकर [कम्मत्तं] कर्मत्व-रूप [परिणमंति] परिणमन करते हैं [तहेव] उसी प्रकार [जीवो वि] जीव भी [पोग्गलकम्मणिमित्तं] पुद्गल-कर्म का निमित्त पाकर [परिणमदि] परिणमन करता है । तो भी [जीवो] जीव [कम्मगुणे] कर्म के गुणों को [ण वि] नहीं [कुव्वदि] करता [तहेव] उसी भांति [कम्मं] कर्म [जीवगुणे] जीव के

गुणों को नहीं करता । [दु] किंतु [दोणं पि] इन दोनों के [अण्णोण्णणिमित्तेण] परस्पर निमित्त-मात्र से [परिणामं] परिणाम [जाण] जानो [एदेण कारणेण दु] इसी कारण से [सएण भावेण] अपने भावों से [आदा] आत्मा [कत्त] कर्ता कहा जाता है [दु] परंतु [पोग्गलकम्मकदाणं] पुद्गल कर्म द्वारा किये गये [सव्वभावाणं] समस्त ही भावों का [ण कत्त] कर्ता नहीं है ।

जीव का कर्ता-कर्मभाव और भोक्तृ-भोग्य-भाव अपने परिणामों के साथ ही

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि (८३)

वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं ॥८९॥

[णिच्छयणयस्स] निश्चय-नय के मत में [एवं] इस प्रकार [आदा] आत्मा [अप्पाणमेव हि] अपने को ही [करेदि] करता है [पुणो दु] और फिर [अत्ता] वह आत्मा [तं चेव अत्ताणं] अपने को ही [वेदयदि] भोगता है ऐसा तू [जाण] जान ।

अब आगे लोक-व्यवहार जैसा होता है, वैसा बतलाते हैं --

ववहारस्स दु आदा पोग्गलकम्मं करेदि णेयविहं (८४)

तं चेव पुणो वेयइ पोग्गलकम्मं अणेयविहं ॥९०॥

[ववहारस्स दु] परंतु व्यवहार-नय के दर्शन में [आदा] आत्मा [णेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म को [करेदि] करता है [तं चेव पुणो] और फिर उस ही [अणेयविहं] अनेक प्रकार के [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म को [वेयइ] भोगता है ।

द्विक्रियावादियों की मान्यता दूषित

जदि पोग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा (८५)

दोकिरियावदिरित्ते पसज्जदे सो जिणावमदं ॥९१॥

[जदि] यदि [आदा] आत्मा [इणं] इस [पोग्गलकम्म] पुद्गल-कर्म को [कुव्वदि] करे [च] और [तं चेव] उसी को [वेदयदि] भोगे तो [सो] वह [दोकिरियावदिरित्ते] आत्मा दो क्रिया से अभिन्न [पसज्जदे] प्रसक्त होता है सो यह [जिणावमदं] जिनदेव का अवमत है याने जिनमत से अलग है ।

द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि क्यों ?

जम्हा दु अत्तभावं पोग्गलभावं च दो वि कुव्वंति (८६)

तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो होंति ॥९२॥

[जम्हा दु] जिस कारण [अत्तभावं] आत्मा के भाव को [च] और [पोग्गलभावं] पुद्गल के भाव को [दो वि] दोनों ही को आत्मा [कुव्वंति] करते हैं ऐसा कहते हैं [तेण दु] इसी कारण

[दोकिरियावादिणो] दो क्रियाओं को एक के ही कहने वाले [मिच्छादिट्ठी] मिथ्यादृष्टि ही [हुंति] हैं ।

द्विक्रियावादी का विशेष व्याख्यान

**पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं
पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं ॥९३॥**

[जह] जैसे यह [आदा] आत्मा [पुग्गलकम्मणिमित्तं] पौदगलिक ज्ञानावरणादि कर्म के उदय के निमित्त से होने वाले [अप्पणो भावं] अपने भावों को [कुणदि] करता है [तह] उसी प्रकार [पुग्गलकम्मणिमित्तं] पौदगलिक कर्म के निमित्त से होने वाले [अप्पणो भावं] अपने भावों को [वेददि] भोगता भी है ।

शुद्ध-चैतन्य स्वभावी जीव में मिथ्या-दर्शनादि विकारी भाव कैसे ?

**मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं (८७)
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा ॥९४॥**

[पुण] और [मिच्छत्तं] जो मिथ्यात्व कहा गया था वह [दुविहं] दो प्रकार का है [जीवमजीवं] एक जीव मिथ्यात्व, एक अजीव मिथ्यात्व [तहेव] और उसी प्रकार [अण्णाणं] अज्ञान [अविरदि] अविरति, [जोगो] योग, [मोहो] मोह और [कोहादीया] क्रोधादि-कषाय [इमे भावा] ये सभी भाव जीव-अजीव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं ।

मिथ्यात्वादिक जीव अजीव कहे हैं वे कौन हैं ?

**पोग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अण्णाणमज्जीवं (८८)
उवओगो अण्णाणं अविरदि मिच्छं च जीवो दु ॥९५॥**

[मिच्छं] जो मिथ्यात्व [जोगो] योग [अविरदि] अविरति [अण्णाणमज्जीवं] अज्ञान अजीव है वह तो [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म है [च] और जो [अण्णाणं] अज्ञान [अविरदि] अविरति [मिच्छं] मिथ्यात्व [जीवो] जीव है [दु] सो [उवओगो] उपयोग है ।

आत्म-भावों का कर्ता आत्मा और द्रव्य-कर्मादिमय पर-भावों का कर्ता पुद्गल

**उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स (८९)
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥९६॥**

[मोहजुत्तस्स] अनादि से मोहयुक्त [उवओगस्स] उपयोग के [अणाई] अनादि से लेकर [तिण्णि परिणामा] तीन परिणाम हैं वे [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व [अण्णाणं] अज्ञान [च अविरदिभावो] और अविरति-भाव [य णादव्वो] ये तीन जानना चाहिये ।

आत्मा के तीन-विकारी परिणामों का कर्तापना है

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो (९०)
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥९७॥

[सुद्धो] यद्यपि शुद्धनय से [णिरंजणो] निरंजन / शुद्ध [उवओगो] उपयोग याने आत्मा है तो भी [एदेसु य] मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति इन तीनों के निमित्तभूत होने पर [तिविहो भावो] तीन प्रकार परिणाम वाला होता है । [सो] सो वह आत्मा [जं] जब जिस [भावं] भाव को [करेदि] स्वयं करता है [तस्स] उसी का [सो] वह [कत्ता] कर्ता होता है ।

कर्म-वर्गणा योग्य पुद्गल-द्रव्य अपने उपादान से कर्म-रूप में परिणत होता है

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स (९१)
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पोग्गलं दव्वं ॥९८॥

[आदा] आत्मा [जं भावमा] जिस भाव को [कुणदि] करता है [तस्स भावस्स] उस भाव का [कत्ता] कर्ता [सो] वह [होदि] होता है [तम्हि] उसके कर्ता होने पर [पोग्गलं दव्वं] पुद्गल-द्रव्य [सयं] अपने आप [कम्मत्तं] कर्मरूप [परिणमदे] परिणमन करता है ।

वीतराग-स्वसंवेदन-ज्ञान के नहीं होने से नूतन कर्म बंध

परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो (९२)
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि ॥९९॥

[अण्णाणमओ] अज्ञानमय [सो जीवो] वह जीव [परमप्पाणं] पर को आप-रूप [कुव्वं] करता है [य] और [अप्पाणं पि] अपने को भी [परं] पररूप [करिंतो] करता हुआ [कम्माणं] कर्मों का [कारगो] कर्ता [होदि] होता है ।

वीतराग-स्वसंवेदन के प्रभाव से कर्मों का अबंध

परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो (९३)
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि ॥१००॥

[जीवो] जीव [परमप्पाणमकुव्वं] अपने को पर-रूप नहीं करता हुआ [य] और [परं] पर को [अप्पाणं पि] अपने रूप भी [अकुव्वंतो] नहीं करता हुआ [सो] वह [णाणमओ] ज्ञानमय [जीवो] जीव [कम्माणमकारगो] कर्मों का करने वाला नहीं [होदि] है ।

अज्ञान से ही नूतन कर्मों का बंध क्यों ?

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोऽहं (९४)

कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥१०१॥

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी (९५)

कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥१०२॥

[एस] यह [तिविहो] तीन प्रकार का [उवओगो] उपयोग [अप्पवियप्पं] अपने में विकल्प [करेदि] करता है कि [कोहोऽहं] मैं क्रोध-स्वरूप हूं, सो वह [तस्स] उस [उवओगस्स] उपयोगरूप [अत्तभावस्स] अपने भाव का [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है । [एस] यह [तिविहो] तीन प्रकार का [उवओगो] उपयोग [धम्मादी] धर्म आदिक द्रव्य-रूप [अप्पवियप्पं] आत्म-विकल्प [करेदि] करता है याने उनको अपने जानता है सो वह [तस्स] उस [उवओगस्स] उपयोग-रूप [अत्तभावस्स] अपने भाव का [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है ।

कर्तृत्व का मूल कारण अज्ञान

एवं पराणि दव्वाणि अप्पय कुणदि मंदबुद्धीओ (९६)

अप्पाणं अवि य परं करेदि अण्णाणभावेण ॥१०३॥

[एवं] ऐसे पूर्व-कथित रीति से [मंदबुद्धीओ] अज्ञानी [अण्णाणभावेण] अज्ञान-भाव से [पराणि दव्वाणि] पर-द्रव्यों को [अप्पय] अपने-रूप [कुणदि] करता है [अवि य] और [अप्पाणं] अपने को [परं करेदि] पर-रूप करता है ।

सम्यग्ज्ञान होने पर कर्ता-कर्म भाव नष्ट

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहिं परिकहिदो (९७)

एवं खलु जो जाणदि सो मुञ्चदि सव्वकत्तितं ॥१०४॥

[एदेण दु] इस पूर्व-कथित कारण से [णिच्छयविदूहिं] निश्चय के जानने वाले ज्ञानियों के द्वारा [सो आदा] वह आत्मा [कत्ता परिकहिदो] कर्ता कहा गया है [एवं खलु] इस प्रकार निश्चय से [जो जाणदि] जो जानता है [सो] वह ज्ञानी हुआ [सव्वकत्तितं] सब कर्तृत्व को [मुञ्चदि] छोड़ देता है ।

पर-भावों को भी आत्मा करता है -- व्यवहारियों का मोह

ववहारेण दु आदा करेदि घडपडरधाणि दव्वाणि (९८)

करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥१०५॥

जदि सो परदव्वाणि य करेज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज (९९)

जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्त ॥१०६॥

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे (१००)

जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्त ॥१०७॥

[आदा] आत्मा [ववहारेण] व्यवहार से [घडपडरधाणि दव्वाणि] घट पट रथ इन वस्तुओं को [करणाणि य] और इंद्रियादिक करण-पदार्थों को [कम्माणि य] और ज्ञानावरणादिक तथा क्रोधादिक द्रव्य-कर्म, भाव-कर्मों को [इह] तथा इस लोक में [विविहाणि] अनेक प्रकार के [णोकम्माण] शरीरादि नोकर्मों को [करेदि] करता है । [जदि] यदि [सो] वह आत्मा [परदव्वाणि] पर-द्रव्यों को [करेज्ज] करे [य] तो [णियमेण] नियम से वह आत्मा उन पर-द्रव्यों से [तम्मओ] तन्मय [होज्ज] हो जाय [जम्हा] परन्तु [ण तम्मओ] आत्मा तन्मय नहीं होता [तेण] इसी कारण [सो] वह [तेसिं] उनका [क्ता] कर्ता [ण हवदि] नहीं है । [जीवो] जीव [घडं] घड़े को [ण करेदि] नहीं करता [णेव पडं] और पट को भी नहीं करता [णेव सेसगे दव्वे] शेष द्रव्यों को भी नहीं करता [जोगुवओगा] किन्तु जीव के योग और उपयोग दोनों [उप्पादगा] घटादिक के उत्पन्न करने वाले निमित्त हैं [तेसिं] सो उन दोनों (योग और उपयोग) का यह जीव [हवदि कत्ता] कर्ता है ।

ज्ञानी परभाव का अकर्ता, ज्ञान का ही कर्ता

जे पोग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाणआवरणा (१०१)

ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥१०८॥

[पोग्गलदव्वाणं परिणामा] पुद्गल द्रव्यों के परिणाम ये जो [णाणआवरणा] ज्ञानावरणादिक [होंति] हैं [ताणि] उनको [आदा] आत्मा [ण करेदि] नहीं करता, ऐसा जो [जाणदि] जानता है [सो] वह [णाणी] ज्ञानी [हवदि] है ।

अज्ञानी भी पर-द्रव्य के भाव का अकर्ता

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता (१०२)

तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा ॥१०९॥

[आदा] आत्मा [जं] जिस [सुहमसुहं] शुभ अशुभ [भावं करेदि] भाव को करता है [खलु] वास्तव में [स] वह [तस्स] उस भाव का [क्ता] कर्ता होता है [तं] वह भाव [तस्स] उसका [कम्मं] कर्म [होदि] होता है [सो दु अप्पा] और वही आत्मा [तस्स] उस भाव-रूप कर्म का [वेदगो] भोक्ता होता है ।

किसी के द्वारा परभाव किया जाना अशक्य

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे (१०३)

सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥११०॥

जो द्रव्य [जम्हि] जिस अपने [दव्वे] द्रव्य-स्वभाव में [गुणे] तथा अपने जिस गुण में वर्तता है [सो] वह [अण्णम्हि दु] अन्य [दव्वे] द्रव्य में तथा गुण में [ण संकमदि] संक्रमण नहीं करता (पलटकर अन्य में नहीं मिल जाता) [सो] वह [अण्णमसंकंतो] अन्य में नहीं मिलता हुआ [तं] वह (द्रव्य), (अन्य) [दव्वं] द्रव्य को [कह] कैसे [परिणामए] परिणामा सकता है ?

आत्मा पुद्गल-कर्मों का अकर्ता क्यों ?

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयहिमि कम्महिमि (१०४)
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ॥१११॥

[आदा] आत्मा [पोग्गलमयहिमि कम्महिमि] पुद्गल-मय कर्म में [दव्वगुणस्स य] द्रव्य का तथा गुण का कुछ भी [ण कुणदि] नहीं करता [तम्हि] उसमें (पुद्गलमय कर्म में) [तं उभयम्] उन दोनों को [अकुव्वंतो] नहीं करता हुआ [तस्स] उसका [सो कत्ता] वह कर्ता [कहं] कैसे हो सकता है?

इससे सिद्ध हुआ कि व्यवहार से आत्मा द्रव्य-कर्मों का कर्ता है

जीवम्हि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं (१०५)

जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण ॥११२॥

जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं ति जंपदे लोगो (१०६)

ववहारेण तह कदं णाणावरणादि जीवेण ॥११३॥

[जीवम्हि] जीवके [हेदुभूदे] निमित्तरूप होनेपर होने वाले [बंधस्स दु] कर्म-बन्ध के [परिणामं] परिणाम को [पस्सिदूण] देखकर [जीवेण] जीव के द्वारा [कदं कम्मं] कर्म किया गया यह [उवयारमेत्तेण] उपचार-मात्र से [भण्णदि] कहा जाता है । [जोधेहिं] योद्धाओं के द्वारा [कदे जुद्धे] युद्ध किये जाने पर [लोगो] लोक [इति जंपदे] ऐसा कहते हैं कि [राएण कदं] राजा ने युद्ध किया सो यह [ववहारेण] व्यवहार से कहना है [तह] उसी प्रकार [णाणावरणादि] ज्ञानावरणादि कर्म [कदं जीवेण] जीव के द्वारा किया गया, ऐसा कहना व्यवहार से है ।

आत्मा पुद्गल कर्म का कर्ता-भोक्ता -- व्यवहार

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणामएदि गिण्हदि य (१०७)

आदा पोग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥११४॥

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगो ति आलविदो (१०८)

तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥११५॥

[आदा] आत्मा [पोग्गलदव्वं] पुद्गल-द्रव्य को [उप्पादेदि] उत्पन्न करता है [य] और [करेदि] करता है [बंधदि] बाँधता है [परिणामएदि] परिणमता है [य] तथा [गिण्हदि] ग्रहण करता है ऐसा [ववहारणयस्स] व्यवहार-नय का [वत्तव्वं] वचन है । [जह] जैसे [राया] राजा [दोसगुणुप्पादगो] प्रजा के दोष और गुणों का उत्पन्न करने वाला है [इति] ऐसा [ववहारा] व्यवहार से [आलविदो] कहा है [तह] उसी प्रकार [जीवो] जीव [दव्वगुणुप्पादगो] पुद्गल-द्रव्य में द्रव्य गुण का उत्पादक है, ऐसा [ववहारा] व्यवहार से [भणिदो] कहा गया है ।

पुद्गल-कर्म का कर्ता कौन?

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तरो (१०९)

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥११६॥

तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो (११०)

मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥११७॥

एदे अचेदणा खलु पोग्गलकम्ममुदयसंभवा जम्हा (१११)

ते जदि करंति कम्मं ण वि तेसिं वेदगो आदा ॥११८॥

गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा (११२)

तम्हा जीवोऽक्त गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥११९॥

[चउरो] चार [सामण्णपच्चया] सामान्य प्रत्यय [खलु] वास्तव में [बंधकत्तारो] बंध के कर्ता [भण्णंति] कहे गये हैं वे [मिच्छत्तं] मिथ्यात्व [अविरमणं] अविरमण [य] और [कसायजोगा] कषाय योग [बोद्धव्वा] जानने चाहिये [य पुणो] और फिर [तेसिं वि] उनका भी [तेरसवियप्पो] तेरह प्रकार का [इमो] यह [भेदो] भेद [भणिदो] कहा गया है जो कि [मिच्छादिट्ठी आदी] मिथ्यादृष्टि को आदि लेकर [सजोगिस्स चरमंतं जाव] सयोग केवली तक है । [एदे] ये [खलु] निश्चय से [अचेदणा] अचेतन हैं [जम्हा] क्योंकि [पोग्गलकम्ममुदयसंभवा] पुद्गल-कर्म के उदय से हुए हैं [जदि] यदि [ते] वे [करंति कम्मं] कर्म को करते हैं तो करें, किन्तु [तेसिं वेदगो] उनका भोक्ता [वि] भी [ण आदा] आत्मा नहीं होता [जम्हा] क्योंकि [गुणसण्णिदा] गुण नाम वाले [दु एदे पच्चया] ये प्रत्यय [कम्मं कुव्वंति] कर्म को करते हैं [तम्हा] इस कारण [जीवोऽक्ता] जीव तो कर्म का कर्ता नहीं है [य] और [गुणा] ये गुण ही [कुव्वंति कम्माणि] कर्मों को करते हैं ।

जीव और क्रोधादि प्रत्ययों का एकत्व नहीं

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो (११३)

जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं ॥१२०॥

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाऽजीवो (११४)

अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥१२१॥

अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा (११५)

जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥१२२॥

[जह] जैसे [जीवस्स] जीव के [अण्णुवओगो] उपयोग एकरूप है [तह] उसी प्रकार [जदि] यदि [कोहो वि] क्रोध भी [अण्णो] एकरूप हो जाय तो [एवम] इस तरह [जीवस्साजीवस्स य] जीव और अजीव के [अण्णत्तम] एकत्व [आवण्णं] प्राप्त हुआ [एवमिह] ऐसा होने से इस लोक में [य दु] जो [जीवो] जीव है [सो एव] वही [णियमदो] नियम से [तहा] वैसा ही [अजीवो] अजीव हुआ [एयत्ते] ऐसे दोनों के एकत्व होने में [अयं दोसो] यह दोष प्राप्त हुआ । [पच्चयणोकम्मकम्माणं] इसी प्रकार प्रत्यय नोकर्म-कर्म इनमें भी यही दोष जानना । [अह] अब इस दोष के भयसे [दे] तेरे मत में [कोहो] क्रोध [अण्णो] अन्य है और [उवओगप्पगो] उपयोग-स्वरूप [चेदा] आत्मा [अण्णु] अन्य [हवदि] है तो [जह कोहो] जैसे क्रोध है [तह] उसी प्रकार [पच्चय] प्रत्यय [कम्मं] कर्म [णोकम्ममवि] और नोकर्म ये भी [अण्णं] आत्मा से अन्य ही हैं, ऐसा निश्चय करो ।

पुद्गल के कथंचित परिणामी स्वभाव-पना

जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण (११६)

जइ पोग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥१२३॥

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण (११७)

संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥१२४॥

जीवो परिणामयदे पोग्गलदव्वाणि कम्मभावेण (११८)

ते सयमपरिणमंते कहं णु परिणामयदि चेदा ॥१२५॥

अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पोग्गलं दव्वं (११९)

जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥

णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चिय होदि पोग्गलं दव्वं (१२०)

तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥

[जइ पोग्गलदव्वमि] यदि पुद्गल-द्रव्य [जीवे] जीव में [सयं] स्वयं [ण बद्धं] नहीं बँधा [कम्मभावेण] कर्म-भाव से [सयं] स्वयं [ण परिणमदि] नहीं परिणमन करता है [इणं तदा] ऐसा

मानो तो यह पुद्गल-द्रव्य [अप्परिणामी] अपरिणामी [होदि] प्रसक्त होता है [य] और [कम्मइयवग्गणासु] कार्माण-वर्गणाओं के [कम्मभावेण] कर्म-भाव से [अपरिणमंतीसु] नहीं परिणमने पर [संसारस्स] संसार का [अभावो] अभाव [पसज्जदे] ठहरेगा [वा] अथवा [संखसमओ] सांख्य मत का प्रसंग आयेगा । [जीवो] यदि जीव ही [पोग्गलदव्वाणि] पुद्गल-द्रव्यों को [कम्मभावेण] कर्म-भाव से [परिणामयदे] परिणमन कराता है ऐसा माना जाय तो [सयमपरिणमंते] आप ही परिणमन न करते [ते] उन पुद्गल-द्रव्यों को [चेदा] यह चेतन जीव [कहं णु] कैसे [परिणामयदि] परिणमा सकता है । [अह] अथवा [पोग्गलं दव्वं] पुद्गल-द्रव्य [सयमेव हि] आप ही [कम्मभावेण] कर्म-भाव से [परिणमदि] परिणमता है, ऐसा माना जाय तो [जीवो] 'जीव [कम्मं] कर्म-रूप पुद्गल को [कम्मत्तम] कर्म-रूप से [परिणामयदे] परिणमाता है' [इदि] ऐसा कहना [मिच्छा] झूठ हो जाता है । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि [पोग्गलं दव्वं] पुद्गल-द्रव्य [कम्मपरिणदं] कर्म-रूप परिणत हुआ [णियमा चैव] नियम से ही [कम्मं] कर्म-रूप [होदि] होता है [तह] ऐसा होने पर [चिय] वह पुद्गल-द्रव्य ही [णाणावरणाइपरिणदं] ज्ञानावरणादिरूप परिणत [तं] पुद्गल-द्रव्य को [तच्चेव] ज्ञानावरणादि ही हैं, ऐसा [मुणसु] जानो ।

जीव-द्रव्य में कथंचित परिणामित्व

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं (१२१)

जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ॥१२६॥

अपरिणमंतमिह सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं (१२२)

संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥१२७॥

पोग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं (१२३)

तं सयमपरिणमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो ॥१२८॥

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी (१२४)

कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥१२९॥

कोहुवजुत्ते कोहो माणवजुत्ते य माणमेवादा (१२५)

माउवजुत्ते माया लोहुवजुत्ते हवदि लोहो ॥१३०॥

[एस जीवो] यह जीव [कम्मे] कर्म में [ण सयं बद्धो] स्वयं बँधा नहीं है और [कोहमादीहिं] क्रोधादि भावों से [ण सयं परिणमदि] स्वयं नहीं परिणमता [जइ] यदि [एस] ऐसा [तुज्झ] तेरा मत है [तदा] तो [अप्परिणामी] वह जीव अपरिणामी [होदि] प्रसक्त होता है और [जीवे] जीव के

[कोहादिएहिं भावेहिं] क्रोधादि भावों द्वारा [अपरिणमंतम्हि सयं] स्वयं परिणत न होने पर [संसारस्स अभावो] संसार का अभाव [पसज्जदे] प्रसक्त हो जायगा [वा] अथवा [संखसमओ] सांख्य-मत प्रसक्त हो जावेगा । यदि कोई कहे कि [पोग्गलकम्मं] पुद्गल-कर्म जो [कोहो] क्रोध है वह [जीवं] जीव को [कोहत्तं] क्रोध-भाव-रूप [परिणामएदि] परिणमाता है तो [सयमपरिणमंतं] स्वयं न परिणत हुए [तं] जीव को [कोहो] क्रोध-कर्म [कहं णु] कैसे [परिणामयदि] परिणमा सकता है ? [अह] यदि [एस दे बुद्धी] तेरी ऐसी समझ है कि [सयमप्पा] आत्मा अपने आप [कोहभावेण] क्रोध-भाव से [परिणमदि] परिणमन करता है तो [कोहो] पुद्गल-कर्म-रूप क्रोध [जीवं] जीव को [कोहत्तम्] क्रोध-भाव-रूप [परिणामयदे] परिणमाता है [इदि मिच्छा] ऐसा करना मिथ्या ठहरता है । (इसलिये यह सिद्धान्त है कि) [कोहुवजुत्ते] क्रोध में उपयुक्त अर्थात् जिसका उपयोग क्रोधाकार-रूप परिणमता है, ऐसा [आदा] आत्मा [कोहो] क्रोध ही है [य] और [माणवजुत्ते] मान से उपयुक्त होता हुआ [माणम्] मान ही है, [माउवजुत्ते] माया से उपयुक्त [माया] माया ही है [य] और [लोहुवजुत्ते] लोभ से उपयुक्त होता हुआ [लोहो] लोभ ही [हवदि] है ।

निर्ग्रन्थ / मोह-रहित / परिग्रह रहित साधु कौन

**जो संगं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठवियाणया विन्ति ॥१३१॥**

**जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विन्ति ॥१३२॥**

**जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं
तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विन्ति ॥१३३॥**

जो साधु बाह्य और अभ्यन्तर दोनों प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह को छोड़कर अपने आपकी आत्मा को दर्शन-ज्ञानोपयोग-स्वरूप शुद्ध अनुभव करता है, उसको परमार्थ स्वरूप के जानने वाले गणधरादिक-देव निर्ग्रन्थ-साधु कहते हैं । जो पर-पदार्थों में होने वाले मोह को छोड़कर अपने आप को निर्विकल्प-ज्ञान-स्वभावा-मय अनुभव करता है, उसको परमार्थ के जानने वाले तीर्थकरादिक-परमेष्ठी उसी साधु को मोह-रहित कहते हैं । जो कोई साधु व्यावहारिक-धर्म को छोड़कर शुद्ध-ज्ञान-दर्शनोपयोग-रूप आत्मा को जानता है उनको परमार्थ के ज्ञाता धर्म के परिग्रह से भी रहित कहते हैं ।

जीव के भावों का विशेष-रूप से कर्तापना

**जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स (१२६)
णाणिस्स स णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥१३४॥**

[आदा] आत्मा [जं भावम्] जिस भाव को [कुणदि] करता है [तस्स कम्मस्स] उस भाव-रूप कर्म का [सो] वह [कत्ता] कर्ता [होदि] होता है । वहाँ [णाणिस्स] ज्ञानी के तो [स] वह भाव [णाणमओ] ज्ञान-मय है और [अणाणिस्स] अज्ञानी के [अण्णाणमओ] अज्ञानमय है ।

ज्ञानमय और अज्ञानमय भाव से क्या होता है

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि (१२७)

णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि ॥१३५॥

[अणाणिणो] अज्ञानी का [अण्णाणमओ भावो] अज्ञानमय भाव है [तेण] इस कारण [कम्माणि] अज्ञानी कर्मों को [कुणदि] करता है [दु] और [णाणिस्स] ज्ञानी के [णाणमओ] ज्ञानमय भाव होता है [तम्हा] इसलिये वह ज्ञानी [कम्माणि] कर्मों को [ण] नहीं [कुणदि] करता ।

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो (१२८)

जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥१३६॥

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो (१२९)

जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥१३७॥

[जम्हा] जिस कारण [णाणमया भावाओ च] ज्ञानमय भाव से [णाणमओ एव] ज्ञानमय ही [जायदे भावो] भाव उत्पन्न होता है । [तम्हा] इस कारण [णाणिस्स] ज्ञानी के [हु] निश्चय से [सव्वे भावा] सब भाव [णाणमया] ज्ञानमय हैं । और [जम्हा] जिस कारण [अण्णाणमया भावा च] अज्ञानमय भाव से [अण्णाणो एव] अज्ञानमय ही [जायदे भावो] भाव उत्पन्न होता है [तम्हा] इस कारण [अणाणिस्स] अज्ञानी के [अण्णाणमया] अज्ञानमय ही [भावा] भाव उत्पन्न होते हैं ।

कणयमया भावादो जायंते कुण्डलादओ भावा (१३०)

अयमयया भावादो जह जायंते दु कडयादी ॥१३८॥

अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहा वि जायंते (१३१)

णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥१३९॥

[जह] जैसे [कणयमया भावादो] सुवर्णमय भाव से [कुण्डलादओ भावा] सुवर्णमय कुंडलादिक भाव [जायंते] उत्पन्न होते हैं [दु] और [अयमयया भावादो] लोहमय भाव से [कडयादी] लोहमयी कड़े इत्यादिक भाव [जायंते] उत्पन्न होते हैं [तहा] उसी प्रकार [अणाणिणो] अज्ञानी के [अण्णाणमया भावा] अज्ञानमय भाव से [बहुविहा वि] अनेक तरह के [अण्णाणमया भावा] अज्ञानमय भाव

[जायंते] उत्पन्न होते हैं [दु] परन्तु [णाणिस्स] ज्ञानी के [सव्वे] सभी [णाणमया भावा] ज्ञानमय भाव [होति] होते हैं ।

अण्णाणस्स स उदओ जा जीवाणं अतच्चउवलद्धी (१३२)

मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥१४०॥

उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं (१३३)

जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥१४१॥

तं जाण जोग उदयं जो जीवाणं तु चिट्ठउच्छाहो (१३४)

सोहणमसोहण वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥१४२॥

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागदं जं तु (१३५)

परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥१४३॥

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागदं जइया (१३६)

तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥१४४॥

[जीवाणं] जीवों के [जा] जो [अतच्चउवलद्धी] अन्यथा-स्वरूप का जानना है [स] वह [अण्णाणस्स] अज्ञान का [उदओ] उदय है [दु] और [जीवस्स] जीव के [असद्दहाणत्तं] जो तत्त्व का अश्रद्धान है वह [मिच्छत्तस्स] मिथ्यात्व का [उदओ] उदय है [दु] और [जीवाणं] जीवों के [जं] जो [अविरमणं] अत्यागभाव [हवेइ] है [असंजमस्स] वह असंयम का [उदओ] उदय है [दु] और [जीवाणं] जीवों के जो [कलुसोवओगो] मलिन याने जानपने की स्वच्छता से रहित उपयोग है [सो] वह [कसाउदओ] कषाय का उदय है [तु यः] और जो [जीवाणं] जीवों के [सोहणमसोहण वा] शुभरूप अथवा अशुभरूप [कायव्वो] प्रवृत्तिरूप [वा] अथवा [विरदिभावो] निवृत्ति-रूप [चिट्ठउच्छाहो] मन वचन काय की चेष्टा का उत्साह है [तं] उसे [जोग उदयं] योग का उदय [जाण] जानो । [एदेसु] इनके [हेदुभूदेसु] हेतुभूत होने पर [जं तु] जो [कम्मइयवग्गणागदं] कर्मण-वर्गणागत पुद्गल-द्रव्य [णाणावरणादिभावेहिं अट्ठविहं] ज्ञानावरण आदि भावों से आठ प्रकार [परिणमदे] परिणमन करता है [तं] वह [कम्मइयवग्गणागदं] कर्मण-वर्गणागत पुद्गल-द्रव्य [जइया खलु] जब वास्तव में [जीवणिबद्धं] जीव में निबद्ध होता है [तइया दु] उस समय [परिणामभावाणं] उन अज्ञानादिक परिणाम भावों का [हेदू] कारण [जीवो] जीव [होदि] होता है ।

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादी (१३७)

एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा ॥१४५॥

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं (१३८)

ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो ॥१४६॥

जइ जीवेण सह च्चिय पोग्गलदव्वस्सकम्मपरिणामो (१३९)

एवं पोग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा ॥

एकस्स दु परिणामो पोग्गलदव्वस्स कम्मभावेण (१४०)

ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥१४७॥

[दु जीवस्स] यदि ऐसा माना जाय कि जीव के [रागादी] रागादिक [परिणामा] परिणाम [हु] वास्तव में [कम्मेण य सह] कर्म के साथ [होंति] होते हैं [एवं] इस प्रकार तो [जीवो कम्मं च] जीव और कर्म [दो वि] ये दोनों ही [रागादिमावण्णा] रागादि परिणाम को प्राप्त हो पड़ते हैं । [दु] परन्तु [रागमादीहिं] रागादिकों से [परिणामो] परिणमन तो [एकस्स जीवस्स] एक जीव का ही [जायदि] उत्पन्न होता है [ता] वह [कम्मोदयहेदूहिं विणा] कर्म के उदयरूप निमित्त कारण से पृथक् [जीवस्स परिणामो] जीव का ही परिणाम है । [जइ] यदि [जीवेण सह च्चिय] जीव के साथ ही [पोग्गलदव्वस्सकम्मपरिणामो] पुद्गल-द्रव्य का कर्म-रूप परिणाम होता है, तो [एवं] इस प्रकार [पोग्गलजीवा दो वि] पुद्गल और जीव दोनों [हु] ही [कम्मत्तमावण्णा] कर्मत्व को प्राप्त हो जावेंगे [दु] परंतु [कम्मभावेण] कर्म-रूप से [परिणामो] परिणाम [एकस्स] एक [पोग्गलदव्वस्स] पुद्गल-द्रव्य का होता है [ता] इसलिये [जीवभावहेदूहिं विणा] जीवभाव निमित्तकारण से पृथक् [कम्मस्स] कर्म का [परिणामो] परिणाम है ।

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं (१४१)

सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं ॥१४८॥

[जीवे] जीव में [कम्मं बद्धं] कर्म बँधा हुआ है [च] तथा [पुट्ठं] छुआ हुआ है [इदि] ऐसा [ववहारणयभणिदं] व्यवहारणय का वचन है [दु] और [जीवे] जीव में [कम्मं] कर्म [अबद्धपुट्ठं] अबद्धस्पृष्ट [हवदि] है अर्थात् न बँधा है, न छुआ है ऐसा [सुद्धणयस्स] शुद्धणय का कथन है ।

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं (१४२)

पक्खादिककंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥१४९॥

[जीवे] जीवमें [कम्मं बद्धमबद्धं] कर्म बँधा हुआ है अथवा नहीं बँधा हुआ है [एवं तु] इस प्रकार तो [णयपक्खं] नयपक्ष [जाण] जानो [पुण जो] और जो [पक्खादिककंतो] पक्ष से पृथक् हुआ [भण्णदि] कहा जाता है [सो समयसारो] वह समयसार है, निर्वकल्प आत्म-तत्त्व है।

दोण्ह वि णयाण भणिदं जाणदि णवरं तु समयपडिबद्धो (१४३)

ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचि वि णयपक्खपरिहीणो ॥१५०॥

[णयपक्खपरिहीणो] नयपक्ष से रहित [समयपडिबद्धो] अपने शुद्धात्मा से प्रतिबद्ध ज्ञानी पुरुष [दोण्ह वि] दोनों ही [णयाण] नयों के [भणिदं] कथन को [णवरं] केवल [जाणदि तु] जानता ही है [दु] परन्तु [णयपक्खं] नयपक्ष को [किंचि वि] किंचितमात्र भी [ण गिण्हदि] नहीं ग्रहण करता।

सम्मददंसणणाणं एसो लहदि ति णवरि ववदेसं (१४४)

सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥१५१॥

जो [सव्वणयपक्खरहिदो] सब नयपक्षों से रहित है [सो समयसारो] वही समयसार [भणिदो] कहा गया है। [एसो] यह समयसार ही [णवरि] केवल [सम्मददंसणणाणं] सम्यग्दर्शन ज्ञान [ति] ऐसे [ववदेसं] नाम को [लहदि] पाता है।

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं (१४५)

कह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥१५२॥

[कम्ममसुहं] अशुभ कर्म को [कुसीलं] पाप-स्वभाव [चावि] और [सुहकम्मं] शुभकर्म को [सुसीलं] पुण्य-स्वभाव [जाणह] जानो। परन्तु परमार्थ-दृष्टि से कहते हैं कि [जं] जो [संसारं] प्राणी को संसार में ही [पवेसेदि] प्रवेश कराता है [तं] वह कर्म [सुसीलं] शुभ, अच्छा [कह] कैसे [होदि] हो सकता है?

सोवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं (१४६)

बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१५३॥

[जह] जैसे [कालायसं णियलं] लोहे की बेड़ी [पुरिसं बंधदि] पुरुष को बांधती है [पि] और [सोवण्णियं पि] सुवर्ण की बेड़ी भी पुरुष को बाँधती है [एवं] इसी प्रकार [सुहमसुहं वा] शुभ तथा अशुभ [कदं कम्मं] किया हुआ कर्म [बंधदि जीवं] जीव को बांधता ही है।

**तम्हा दु कुसीलेहि य रागं मा कुणह मा व संसग्गं (१४७)
साहीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥१५४॥**

[तम्हा दु] इस कारण [कुसीलेहि] उन दोनों कुशीलों से [रागं मा कुणह] प्रीति मत करो [व] अथवा [संसग्गं य] संबंध भी [मा] मत करो [हि] क्योंकि [कुसीलसंसग्गरायेण] कुशील के संसर्ग और राग से [साहीणो विणासो] स्वाधीनता का विनाश होता है ।

**जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्त (१४८)
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रागकरणं च ॥१५५॥
एमेव कम्मपयडीसीलसहावं च कुच्छिदं णादुं (१४९)
वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरदा ॥१५६॥**

[जह णाम] जैसे [कोवि पुरिसो] कोई पुरुष [कुच्छियसीलं] खोटे स्वभाव वाले [जणं वियाणित्त] किसी पुरुष को जानकर [तेण समयं] उसके साथ [संसग्गं रागकरणं च] संगति और राग करना [वज्जेदि] छोड़ देता है [एमेव च] उसी तरह [सहावरदा] स्वभाव में प्रीति रखने वाले ज्ञानी जीव [कम्मपयडीसीलसहावं] कर्म-प्रकृतियों के शील स्वभाव को [कुच्छिदं णादुं] निन्दनीय जानकर [वज्जंति] उससे राग छोड़ देते हैं [य] और [तस्संसग्गं] उसकी संगति भी [परिहरंति] छोड़ देते हैं ।